शम्पाकगीता

[शम्पाकगीता महाभारतके शान्तिपर्वके अन्तर्गत आती है। इसमें पितामह भीष्मने शम्पाक नामक एक त्यागी ब्राह्मणके अनुभूत उपदेशोंको उन्हींके शब्दोंमें युधिष्ठिरको बताकर त्यागके लिये प्रेरित किया है। संसारमें धनी हो अथवा निर्धन सुख-दुःख प्रत्येक मनुष्यको होता है। त्यागके बिना न वास्तविक सुख मिलता है न ही परमात्मा। त्यागवृत्ति अपनाकर सुखी होनेका उपदेश देनेवाली यह शम्पाकगीता यहाँ सानुवाद प्रस्तुत की जा रही है—]

युधिष्ठिर उवाच

धनिनश्चाधना ये च वर्तयन्ते स्वतन्त्रिणः।
सुखदुःखागमस्तेषां कः कथं वा पितामह॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! धनी और निर्धन—दोनों स्वतन्त्रता-पूर्वक व्यवहार करते हैं; फिर उन्हें किस रूपमें और कैसे सुख और दुःखकी प्राप्ति होती है?॥ १॥

भीष्म उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
शम्पाकेनेह मुक्तेन गीतं शान्तिगतेन च॥ २॥

भीष्मजीने कहा—[युधिष्ठिर!] इस विषयमें विद्वान् पुरुष इस पुरातन इतिहासका उदाहरण देते हैं, जिसे परम शान्त जीवन्मुक्त शम्पाकने यहाँ कहा था॥ २॥

अब्रवीन्मां पुरा कश्चिद् ब्राह्मणस्त्यागमाश्रितः।
क्लिश्यमानः कुदारेण कुचैलेन बुभुक्षया॥ ३॥

पहलेकी बात है, फटे-पुराने वस्त्रों एवं अपनी दुष्टा स्त्रीके और भूखके कारण अत्यन्त कष्ट पानेवाले एक त्यागी ब्राह्मणने जिसका नाम शम्पाक था, मुझसे इस प्रकार कहा—॥ ३॥

उत्पन्नमिह लोके वै जन्मप्रभृति मानवम्।
विविधान्युपवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च॥ ४॥

इस संसारमें जो भी मनुष्य उत्पन्न होता है (वह धनी हो या निर्धन) उसे जन्मसे ही नाना प्रकारके सुख-दुःख प्राप्त होने लगते हैं॥ ४॥

तयोरेकतरे मार्गे यदेनमभिसन्नयेत्।
न सुखं प्राप्य संहृष्येन्नासुखं प्राप्य सञ्ज्वरेत्॥ ५॥

विधाता यदि उसे सुख और दुःख इन दोनोंमेंसे किसी एकके मार्गपर ले जाय तो वह न तो सुख पाकर प्रसन्न हो और न दुःखमें पड़कर परितप्त हो॥ ५॥

न वै चरसि यच्छ्रेय आत्मनो वा यदीशिषे।
अकामात्मापि हि सदा धुरमुद्यम्य चैव ह॥ ६॥

तुम जो कामनारहित होकर भी अपने कल्याणका साधन नहीं कर रहे हो और मनको वशमें नहीं कर रहे हो, इसका कारण यही है कि तुमने राज्यका बोझा अपनेपर उठा रखा है॥ ६॥

अकिञ्चनः परिपतन् सुखमास्वादयिष्यसि।
अकिञ्चनः सुखं शेते समुत्तिष्ठति चैव ह॥ ७॥

यदि तुम सब कुछ त्यागकर किसी वस्तुका संग्रह नहीं रखोगे तो सर्वत्र विचरते हुए सुखका ही अनुभव करोगे; क्योंकि जो अकिंचन होता है—जिसके पास कुछ नहीं रहता है, वह सुखसे सोता और जागता है॥ ७॥

आकिञ्चन्यं सुखं लोके पथ्यं शिवमनामयम्।
अनमित्रपथो ह्येष दुर्लभः सुलभो मतः॥ ८॥

संसारमें अकिंचनता ही सुख है। वही हितकारक, कल्याणकारी और निरापद है। इस मार्गमें किसी प्रकारके शत्रुका भी खटका नहीं

है। यह दुर्लभ होनेपर भी सुलभ है॥ ८॥

अकिञ्चनस्य शुद्धस्य उपपन्नस्य सर्वतः।
अवेक्षमाणस्त्रीँल्लोकान् न तुल्यमिह लक्षये॥ ९॥

मैं तीनों लोकोंपर दृष्टि डालकर देखता हूँ तो मुझे अकिंचन, शुद्ध एवं सब ओरसे वैराग्यसम्पन्न पुरुषके समान दूसरा कोई नहीं दिखायी देता है॥ ९॥

आकिञ्चन्यं च राज्यं च तुलया समतोलयम्।
अत्यरिच्यत दारिद्र्यं राज्यादपि गुणाधिकम्॥ १०॥

मैंने अकिंचनता तथा राज्यको बुद्धिकी तराजूपर रखकर तौला तो गुणोंमें अधिक होनेके कारण राज्यसे भी अकिंचनताका ही पलड़ा भारी निकला॥ १०॥

आकिञ्चन्ये च राज्ये च विशेषः सुमहानयम्।
नित्योद्विग्नो हि धनवान् मृत्योरास्यगतो यथा॥ ११॥

अकिंचनता तथा राज्यमें बड़ा भारी अन्तर यह है कि धनी राजा सदा इस प्रकार उद्विग्न रहता है, मानो मौतके मुखमें पड़ा हुआ हो॥ ११॥

नैवास्याग्निर्न चारिष्टो न मृत्युर्न च दस्यवः।
प्रभवन्ति धनत्यागाद् विमुक्तस्य निराशिषः॥ १२॥

परंतु जो मनुष्य धनको त्यागकर उसकी आसक्तिसे मुक्त हो गया है और मनमें किसी तरहकी कामना नहीं रखता, उसपर न अग्निका जोर चलता है, न अरिष्टकारी ग्रहोंका, न मृत्यु उसका कुछ बिगाड़ सकती है, न डाकू और लुटेरे ही॥ १२॥

तं वै सदा कामचरमनुपस्तीर्णशायिनम्।
बाहूपधानं शाम्यन्तं प्रशंसन्ति दिवौकसः॥ १३॥

वह सदा दैव-इच्छाके अनुसार विचरता है। बिना बिछौनेके

भूतलपर सोता है। बाँहोंका ही तकिया लगाता है और सदा शान्तभावसे रहता है। देवतालोग भी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं॥ १३॥

धनवान् क्रोधलोभाभ्यामाविष्टो नष्टचेतनः।
तिर्यगीक्षः शुष्कमुखः पापको भ्रुकुटीमुखः॥ १४॥

जो धनवान् है, वह क्रोध और लोभके आवेशमें आकर अपनी विचारशक्तिको खो बैठता है, टेढ़ी आँखोंसे देखता है, उसका मुँह सूखा रहता है, भौंहें चढ़ी होती हैं और वह पापमें ही मग्न रहा करता है॥ १४॥

निर्दशन्नधरोष्ठं च क्रुद्धो दारुणभाषिता।
कस्तमिच्छेत् परिद्रष्टुं दातुमिच्छति चेन्महीम्॥ १५॥

क्रोधके कारण वह ओठ चबाता रहता है और अत्यन्त कठोर वचन बोलता है। ऐसा मनुष्य सारी पृथ्वीका राज्य ही दे देना चाहता हो तो भी उसकी ओर कौन देखना चाहेगा?॥ १५॥

श्रिया ह्यभीक्ष्णं संवासो मोहयत्यविचक्षणम्।
सा तस्य चित्तं हरति शारदाभ्रमिवानिलः॥ १६॥

सदा धन-सम्पत्तिका सहवास मूर्ख मनुष्यके चित्तको लुभाकर उसे मोहमें ही डाले रहता है। जैसे वायु शरद्-ऋतुके बादलोंको उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार वह सम्पत्ति मनुष्यके मनको हर लेती है॥ १६॥

अथैनं रूपमानश्च धनमानश्च विन्दति।
अभिजातोऽस्मि सिद्धोऽस्मि नास्मि केवलमानुषः॥ १७॥

फिर उसके ऊपर रूपका अहंकार और धनका मद सवार हो जाता है और वह ऐसा मानने लगता है कि मैं बड़ा कुलीन हूँ, सिद्ध हूँ, कोई साधारण मनुष्य नहीं हूँ॥ १७॥

इत्येभिः कारणैस्तस्य त्रिभिश्चित्तं प्रमाद्यति।
सम्प्रसक्तमना भोगान् विसृज्य पितृसञ्चितान्।
परिक्षीणः परस्वानामादानं साधु मन्यते॥ १८॥

रूप, धन और कुल—इन तीनोंके अभिमानके कारण उसके चित्तमें प्रमाद भर जाता है, वह भोगोंमें आसक्त होकर बाप-दादोंके जोड़े हुए पैसोंको खो बैठता है और दरिद्र होकर दूसरोंके धनको हड़प लाना अच्छा मानने लगता है॥ १८॥

तमतिक्रान्तमर्यादमाददानं ततस्ततः।
प्रतिषेधन्ति राजानो लुब्धा मृगमिवेषुभिः॥ १९॥

इस तरह मर्यादाका उल्लंघन करके जब वह इधर-उधरसे लूट-खसोटकर धन ले आता है, तब राजा उसे उसी प्रकार कठोर दण्ड देकर रोकते हैं, जैसे व्याध बाणोंसे मारकर मृगोंकी गति रोक देते हैं॥ १९॥

एवमेतानि दुःखानि तानि तानीह मानवम्।
विविधान्युपपद्यन्ते गात्रसंस्पर्शजान्यपि॥ २०॥

इस प्रकार मनको तप्त करनेवाले और शरीरके स्पर्शसे होनेवाले ये नाना प्रकारके दुःख मनुष्यको प्राप्त होते हैं॥ २०॥

तेषां परमदुःखानां बुद्ध्या भैषज्यमाचरेत्।
लोकधर्ममवज्ञाय ध्रुवाणामध्रुवैः सह॥ २१॥

अतः अनित्य शरीरोंके साथ सदैव लगे रहनेवाले पुत्रैषणा आदि लोकधर्मोंकी अवहेलना करके अवश्य प्राप्त होनेवाले पूर्वोक्त महान् दुःखोंकी विचारपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये॥ २१॥

नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नात्यक्त्वा विन्दते परम्।
नात्यक्त्वा चाभयः शेते त्यक्त्वा सर्वं सुखी भव॥ २२॥

कोई मनुष्य त्याग किये बिना सुख नहीं पाता, त्याग किये बिना

परमात्माको नहीं पा सकता और त्याग किये बिना निर्भय सो नहीं सकता; इसलिये तुम भी सब कुछ त्यागकर सुखी हो जाओ॥ २२॥

इत्येतद्धास्तिनपुरे ब्राह्मणेनोपवर्णितम्।
शम्पाकेन पुरा मह्यं तस्मात् त्यागः परो मतः॥ २३॥

इस प्रकार पूर्वकालमें शम्पाक नामक ब्राह्मणने हस्तिनापुरमें मुझसे त्यागकी महिमाका वर्णन किया था। अतः त्याग ही सबसे श्रेष्ठ माना गया है॥ २३॥

॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शम्पाकगीता सम्पूर्णा॥